द्विवेदी युग नाम की सार्थकता सिद्ध करते हुए द्विवेदी जी के योगदान पर प्रकाश डालिए

(डॉ रुचिरा ढींगरा)

साहित्य के क्षेत्र में कोई भी विभाजन आत्यंतिक नहीं होता क्योंकि ना कोई युग सहसा प्रारंभ होता है और ना ही उसका अंत होता है। पूर्ववर्ती एवं परवर्ती युगों की प्रवृतियां विशेषताएं कुछ समय तक इस प्रकार घुली मिली रहती हैं कि उनको अलगाना संभव नहीं होता तथापि सांगोपांग की महत्ता और अनिवार्यता संदिग्ध है। हिंदी साहित्य के इतिहास में सन् 1900 (सरस्वती के प्रकाशन काल से) लेकर 1919 तक के कालखंड को द्विवेदी युग की संज्ञा दी जाती है। साहित्य में इस युग विशेष का नामकरण - मुख्य प्रवृत्ति , विकास क्रम या प्रमुख साहित्यकार के आधार पर किया जाता रहा है। विवेच्य युग के विभिन्न नाम सुझाए गए तथा अंततः द्विवेदी युग नाम स्वीकृत हुआ

द्विवेदी युग के विभिन्न अभिधान, आधार एवं सर्वमान्य मतः-

1. **द्वितीय उत्थान काल-:** आचार्य शुक्ल ने विकास क्रम के आधार पर 1900 से 1919 के समय को कविता की नई धारा का द्वितीय उत्थान काल कहा। यह विभाजन केवल कविता के विकास को दृष्टि में रखकर किया गया था अतः इससे संपूर्ण युग की छवि स्पष्ट नहीं होती। इस युग का काव्य वैचारिक एवं शैल्पिक कौशल दृष्टि से विशेष उत्कृष्ट भी नहीं था। उसकी अपेक्षा गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास इसकी उपलब्धि रही है। उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना के अतिरिक्त जीवनी , यात्रा वृतांत , संस्करण और पत्रकारिता का भी प्रवर्तन हुआ। द्वितीय उत्थान काली संज्ञा सीमित, एकांगी और अस्पष्ट होने के कारण सर्वमान्य नहीं हुई।

2. **जागरण सुधार काल -:** डॉ नगेंद्र ने युगीन चेतना के आधार पर विवेच्य युग को भारतेंदु काल की अगली करवट ' जागरण सुधार काल' कहा। तदयुगीन कलयुग परिस्थितियों की सापेक्षता में इस संज्ञा की सार्थकता असंदिग्ध है। इतिहास साक्षी है कि यह ब्रिटिशों के साम्राज्य के कूटनीतिपूर्ण निरंकुश शासन का काल था। 18 57 के विद्रोह के पश्चात 1858 में महारानी विक्टोरिया के

सदाशयता पूर्ण घोषणा पत्र , झूठे बहकावे और तथाकथित छोटे-मोटे सुधारों ने भारतेंदु युगीन साहित्यकारों को ऐसा भ्रान्त कर दिया कि वे ब्रिटिश शासक तथा महारानी विक्टोरिया की जय-जयकार करने लगे किंतु शीघ्र ही प्रतिगामी कानूनों तथा दुर्वह करों से पिसती जनता में क्षोभ और असंतोष की चिंगारी सुलगने लगी जिसका पूर्ण विस्फोट जागरण सुधार काल में हुआ। राज भक्ति की तंद्रा टूट गई और देशभक्ति का निनाद मुखर हुआ। विभिन्न समाज सुधारक आंदोलनों यथा ब्रह्मसमाज , प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, आर्य समाज आदि के प्रभाव स्वरूप सामाजिक , आर्थिक, धार्मिक क्षेत्रों में नवीन चेतना की लहर फैल गई। फलत: अंग्रेजी शिक्षा के बहिष्कार और भारतीय सभ्यता , संस्कृति , धर्म और समाज को पुनर्गठित करने की प्रवृत्ति बलवती होने लगी। तिलक और गांधी के नेतृत्व में ' स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है ' का नारा गूंज उठा। विवेच्यकालीन साहित्य के सभी रूपों में जागरण और सुधार की यह चेतना बलवती मिलती है अतः जागरण सुधार काल की संज्ञा अपेक्षाकृत सार्थक है तथापि इसे व्यावहारिक मान्यता नहीं मिली।

3. **आदर्शवादी काव्य परंपरा:-** गणपति चंद्र गुप्त ने विवेच्य युग कों आदर्शवादी काव्य परंपरा का युग कहा। उनकी संज्ञा केवल युग के काव्य को प्रकाशित करती है। गद्य की उपेक्षा स्पष्ट है। यद्यपि आदर्शवाद इस युग की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है और प्राय: सभी विधाओं में यह स्पष्ट व्यक्त हुई है। इसी के कारण इतिवृत्तात्मकता की प्रवृत्ति बलवती हुई तथा यही अंततः इसके पराभव का एक कारण भी बनी, तथापि यथार्थ से साहित्यकार अछूते नहीं रहे। इनका आदर्श यथार्थोन्मुख था। केवल एक प्रवृत्ति के आधार पर संपूर्ण युग का नामकरण करना समीचीन भी नहीं है।

4. **पूर्व स्वच्छंदतावाद युग :-** डॉ बच्चन सिंह ने उक्त कालखंड को पूर्व स्वच्छंदतावाद युग की संज्ञा दी। स्मरणीय है कि द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध में श्रीधर पाठक, राम नरेश त्रिपाठी, बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन , मुकुटधर पांडेय आदि ने परंपरा की लीक से हटकर स्वानुभूति परक रचनाएं प्रस्तुत की थी। इनकी रचनाओं का मूल स्वर विद्रोह और स्वच्छंदता का था अतः इन्हें

स्वच्छंदतावादी कवि कहा गया है। वस्तुत: ये कवि द्विवेदी युग में ही लिख रहे थे और आगे चलकर छायावाद युग में भी सक्रिय रहे। पूर्व स्वच्छता वादी युग स्वयं में कोई पृथक इयत्ता नहीं रखता अतः यह नाम भी स्वीकृति न पा सका।

5. **परिवर्तन काल:-** मिश्र बंधुओं ने इस काल को परिवर्तन काल कहा । उन्होंने स्वमत की पुष्टि करते हुए इस युग में प्रत्येक आयाम में हुए परिवर्तनों का भी उल्लेख किया है। वस्तुत: परिवर्तन हर युग में होते रहते हैं। यह एक प्रक्रिया है प्रवृत्ति नहीं। इसके आधार पर युग का नामकरण करना उचित नहीं है। युगांतर काल भी इसी प्रकार की संज्ञा है।

6. **द्विवेदी युग :-** यह संज्ञा डॉ भगीरथ मिश्र द्वारा दी गई और सर्वसम्मति से स्वीकार भी कर ली गई। जागरण और सुधार को साहित्य में अभिव्यक्ति देने, उसे श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता , जड़ता से प्रगति और रुढि से स्वच्छंदता के द्वार पर प्रतिष्ठित करने के महत्वपूर्ण अनुष्ठान के पथ प्रदर्शक रहे , युग के प्रमुख कवि ,अनुवादक, पत्रकार और आलोचक महावीर प्रसाद द्विवेदी व्यक्ति होते हुए भी एक संस्था थे। 1903 से 1920 के दो दशकों में सरस्वती के माध्यम से उन्होंने जिस मार्ग का निर्देशन किया उसका अनुगमन करके यह युग उन्नति की चरम सीमा को प्राप्त कर सका। उनकी समकक्षता करने वाला कोई अन्य व्यक्ति तो उस समय ही नहीं बाद में भी नहीं हुआ अतः उनके नाम पर युग का नामकरण सार्थक और समीचीन है।

युग के निर्माण में द्विवेदी जी का योगदान:----

द्विवेदी जी ने पद्य , गद्य और पत्रकारिता जगत को जो समृद्धि प्रदान की उसका आंकलन संभव नहीं है। हिंदी जगत तो उनके कृतित्व के प्रति भी एकमत नहीं है। आचार्य शुक्ल , हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें केवल भाषा सुधारक के रूप में स्मरण किया तथा भाषा परिवर्तन और स्थिरिकरण में उनके योगदान की चर्चा की। उनका काव्य, अनुवाद और आलोचना उनकी दृष्टि में विशेष महत्व के नहीं हैं। यह भ्रामक और एकांगी दृष्टिकोण है। वस्तुत: द्विवेदी जी अपने क्रांतिकारी

विचारों के कारण ही साहित्य सृष्टा कहलाए। उनका भाषा सुधार का कार्य कोई अनोखा या नया नहीं था क्योंकि डॉ श्यामसुंदर दास , डॉ बालमुकुंद गुप्त पहले से ही व्यवस्थित हिंदी का प्रयोग कर रहे थे। 'भारत मित्र' तथा ' नागरी प्रचारिणी' पत्रिका में प्रयुक्त हिंदी भी पर्याप्त समृद्ध थी। रामविलास शर्मा ने सर्वप्रथम 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' ग्रंथ में द्विवेदी जी के प्रदेय का वस्तुपरक मूल्यांकन कर यह सिद्ध कर दिया कि द्विवेदी जी ने अपने संपादन और लेखन द्वारा समाज और संस्कृति के क्षेत्र में नवीन विचारों का आलोक फैलाया जिससे नवजागरण का तीसरा दौर संभव हुआ। उनके योगदान का सही मूल्यांकन करने के लिए हमें उसे पद्य, गद्य तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में पृथक पृथक आकलित करना होगा ।

समाज और संस्कृति के क्षेत्र में द्विवेदी जी जनवादी व्यक्तित्व लेकर उभरे। सामंती औपनिवेशिक व्यवस्था को समाप्त कर जनवादी व्यवस्था की स्थापना उनका अभीष्ट था। तदनुसार उन्होंने महान व्यक्तियों की अपेक्षा दीन हीन निर्धन मजदूरों , कृषकों को महत्व दिया तथा उनकी सेवाओं को देश सेवा के समान बताया। अपनी टिप्पणी 'देश की बात' तथा पुस्तक 'संपत्ति शास्त्र' में उन्होंने कृषकों की व्यवस्था के लिए अंग्रेजों को उत्तरदायी ठहराया तथा लगान बंधी द्वारा उनकी हकूमत समाप्त करने तथा कृषकों को शिक्षित करने की सम्मति दी। औद्योगिक क्रांति तथा वाणिज्य से उद्योग धंधों को होने वाली क्षति को लक्ष्य कर उन्होंने व्यंग्यात्मक टिप्पणीयां की। यद्यपि उद्योगों की प्रगति के लिए उन्होंने मशीनों की पूंजीवादी पद्धति के प्रयोग की हिमायत की किंतु पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध करते हुए स्वदेशी के प्रयोग पर दृढ़ रहे। उनके शब्दों में-

" विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं

वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं"

मजदूरों को एकजुट होकर अनाचार और अत्याचार का प्रतिकार करने तथा आवश्यकता पड़ने पर हड़ताल एवं क्रांति करने के लिए भी उन्होंने प्रोत्साहित किया। रूसी क्रांति के प्रति उनकी

अभिनंदननात्मक उक्तियां उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण की परिचायक हैं। ज्ञान और संस्कृति के क्षेत्र में उन्होंने एक तटस्थ अनवेषक की भूमिका का निर्वाह करते हुए वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त उपलब्धियों से जनमानस को अवगत कराया तथा अनुपयोगी रूढ़ियों और परंपराओं के बहिष्कार पर बल दिया। उन्होंने ना पुनरुत्थानवाद की वकालत की ना पाश्चात्य अनुयायियों की तरह अपनी परंपराओं की उपेक्षा की। वे ज्ञानोपासक थे पर उनका ज्ञान मुक्ति का पर्याय नहीं था। ' सरस्वती ' में निरंतर ज्ञानवर्धक वैज्ञानिक लेखों का प्रकाशन कर उन्होंने हिंदीभाषी जनता में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पनपाने का प्रयास किया। यद्यपि सरस्वती के संपादक की हैसियत से अपनी पत्रिका के राजनीति निरपेक्ष रहने की उन्होंने उद्घोषणा की थी तथापि वे स्वयं उग्र राजनीतिक विचारों के व्यक्ति थे। संपादकीय सीमाओं और मर्यादाओं में रहते हुए भी उन्होंने उग्र राजनीतिक चेतना का प्रसार प्रचार किया। प्रेमचंद की तरह वे भी कलम के सिपाही थे। उन्होंने लेखनी द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन को गति दी। साहित्य के स्तर पर पद्य गद्य सभी क्षेत्रों में उनका योगदान अप्रतिम था। उन्होंने संस्कृत के उत्कृष्ट काव्यों का मराठी के गणात्मक छंदों तथा ब्रजभाषा में दोहा छंद में अनूदित किया। ' वैराग्य शतक', 'श्रृंगार शतक', 'गोविंद शतक',' गंगा लहरी 'और 'कुमारसंभव ' के उनके अनुवाद उत्कृष्ट कोटि के हैं। उन्होंने तदयुगीन समस्याओं को लक्ष्य करके मौलिक कविताएं भी लिखी। ' भारत दुर्भिक्ष ' में अकाल , महामारी, टैक्सों की दुर्वहता से त्रस्त भारतीय जनता का अंकन है। 'वंदे मातरम' कविता में देशप्रेम और स्वाधीनता की आकांक्षा मुखर है।

"हिंदू ,मुसलमान ,ईसाई , यश गावे सब भाई भाई

सब के सब तेरे शैदाई, फूलों फलों स्वदेश।"

'कवि और स्वतंत्रता' रचना में उन्होंने स्पष्ट घोषणा की है कि स्वतंत्र प्राप्ति अंतर्विरोध रहित समाज में ही संभव है तथा उसके लिए त्याग और बलिदान अपेक्षित है। भारतीय पुनर्जागरण में नारी उत्थान भी एक विषय था। द्विवेदी जी ने 'अबला विलाप' , 'ठहरौनी' कविताओं में नारी से

संबद्ध हर समस्याओं को उभारा है। कवि के रूप में उनके योगदान का समुचित मूल्यांकन हुआ भी नहीं है। उन्होंने स्वयं भी अपनी कविताओं को छंद बद्ध प्रलाप कहा तथा उनके प्रकाशन के प्रति उपेक्षा बरती। यह होते हुए भी उन्होंने महाकाव्य , खंडकाव्य , लघु काव्य , मुक्तक आदि काव्य रूपों के विकास पर बल दिया।

निरायास अलंकार योजना, रस की प्रतिष्ठा तथा हिंदी संस्कृत , उर्दू , ब्रज के छन्दों का प्रयोग करने की प्रेरणा दी। आलोचना के क्षेत्र में ये बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र की परंपरा की अगली कड़ी कहे जा सकते हैं। इन्होंने सामंतीय रीति कालीन काव्य सृजन के स्थान पर नैतिकता प्रधान राष्ट्रीय काव्य की रचना पर बल दिया। 'सरस्वती' का कुशल संपादन कर पत्रकारिता की कला को पुष्ट किया। जब रुग्णावस्था के कारण इन्हें संपादक का पद छोड़ना पड़ा तो उसका ढांचा ही चरमरा उठा। अंत तक वे और सरस्वती अभिन्न रहे। उपन्यास , नाटक , कहानी आदि विविध विधाओं में स्वयं सृजन कर उन्होंने उसकी लोकप्रियता बढ़ाई। 'संचयन' और 'उपन्यास रहस्य' पुस्तकों में इन्होंने इन विधाओं के स्वरूप का निर्देश किया। द्विवेदी जी ने प्रसिद्ध साहित्यकारों- माइकल मधुसूदन दत्त, रविंद्र नाथ ठाकुर ; उत्कृष्ट कलाकारों- विष्णु दिगंबर पलुस्कर, मौला बख्श ; समाज सुधारको - रामकृष्ण परमहंस की जीवनी लिखी तथा एक नवीन विधा का सूत्रपात किया। संस्मरणात्मक रोचकता, संवेदनशीलता और प्रभावपूर्ण प्रांजल भाषा की दृष्टि से इनका विशेष महत्व है।

भाषा के स्वरूप को स्थिर करने, उसे प्रौढ़ पुष्ट परिमार्जित बनाने में द्विवेदी जी ने अविस्मरणीय भूमिका निभाई। 1923 में कानपुर अधिवेशन के सभापति पद से दिए गए अपने वक्तव्य में उन्होंने स्वराज और भाषा को अन्योन्याश्रित सिद्ध कर अपनी भाषा को ना छोड़ने की सम्मति दी। 'देश व्यापक भाषा' निबंध में उन्होंने गुजराती, मराठी ,बंगला भाषा भाषियों से हिंदी को देशव्यापी भाषा के रूप में ग्रहण करने का अनुरोध किया था क्योंकि सरकार द्वारा हिंदी को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकृति नहीं मिली थी , ना विश्वविद्यालयों में अपेक्षित प्रतिष्ठा

मिल पाई थी। 1857 के विद्रोह का केंद्र हिंदी भाषी प्रदेश होने से सरकार में यह रुख अपनाया था। अंग्रेजों ने हिंदी उर्दू विवाद को सांप्रदायिक रंग देकर हिंदी भाषी जनता की एकता भंग करने का प्रयास किया। भाषा सुधार के मुख्य सूत्रधार के रूप में द्विवेदी जी ने हिंदी उर्दू को एक बताकर दोनों की उन्नति पर बल दिया।उन्होंने पद्य में ब्रज तथा गद्य में खड़ी बोली के प्रयोग की स्थिति को समाप्त कर दिया तथा खड़ी बोली का वर्चस्व स्थापित किया। ग्रियर्सन द्वारा हिंदी की जातीयता को छिन्न करने के सभी प्रयासों को निर्मूल कर उसे व्याकरण सम्मत , परिनिष्ठित , प्रांजल और प्रवाहमयी बनाया। उनके प्रयासों से ही खड़ी बोली ने तुतलाना छोड़ धारा का रूप ग्रहण किया। द्विवेदी जी के अप्रतिम योगदान के कारण ही उनके नाम पर युग का नाम 'द्विवेदी युग' पड़ा।